ओ३म्

वर्ष : 28 अंक : 4, 25 अप्रैल, 2013 दयानन्दाब्द 186 सृष्टि संवत् 1,96,08,53,111

आर्य वीर विजय

अमर शहीद पं. लेखराम स्मृति मासिक पत्रिका

हरियाणा-दिल्ली-पंजाब-उत्तर प्रदेश-उत्तरांचल-राजस्थान-मध्यप्रदेश-गुजरात-महाराष्ट्र-हिमाचल प्रदेश

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु
– हमारे वीर विजयी हों –

सार्वदेशिक आर्यवीर दल हरियाणा

10 वर्षीय शुल्क 700 रु.
वार्षिक शुल्क 70 रु.
यह अंक 10 रु.

विज्ञापन की दरें (वार्षिक)

अन्तिम पृष्ठ	7000/–
अन्तिम पृष्ठ रंगीन आधा	4000/–
अन्तिम अन्दर का रंगीन	6000/–
अन्दर के रंगीन पृष्ठ	4000/–
अन्दर का आधा (सादा)	2500/–

एक विज्ञापन पट्टी 250/– प्रति पृष्ठ, प्रति अंक

फूलों का गुलदस्ता

संकलनकर्ता- मनोहर लाल, प्रधान सम्पादक

1. अपनी साधना का लक्ष्य अन्तःकरण की स्वच्छता है। (स्वामी दयानन्द)
2. सच्चरित्र और सदव्यवहार के लिये आर्य जाति चिरकाल से विश्व में प्रसिद्ध है। (मैगस्थनीज)
3. ज्ञान वह पंख है जिसके द्वारा हम स्वर्ग की ओर उड़ते हैं। (शेक्सपियर)
4. शान कभी न गिरने में नहीं बल्कि हम गिरें तब-तब हर बार उठने में है। (कन्फयूशियस)
5. भगवान के ध्यान में तन्मय न हो सकने का कारण संसार है। अतः संसार से विरक्त होने का प्रयत्न करो। (स्वामी राम देव)
6. क्रोध करने से आनन्द लुप्त होता है। (चाणक्य)
7. दुश्मनी एक पल मे होती, दोस्ती को जमाने में समय लग जाता है। (गोपीनाथ)
8. जो अपने ही घर में सुधार न कर सका हो उसको दूसरो को सुधारने की चेष्टा करना बड़ी भारी धूर्तता है। (प्रेम चन्द)
9. अग्नि स्वर्ण को परखती है, मुसीबत वीर पुरुषों को। (सेनेका)
10. आलस्य हिंसा का दूसरा नाम है। (महात्मा गांधी)

आर्य वीर विजय

सम्पादक मण्डल

मनोहर लाल
प्रधान सम्पादक

सतीश कौशिक
व्यवस्थापक
☎ : 9312083458

उमेद सिंह शर्मा
संचालक
☎ : 9868956786

देश बंधु आर्य
संरक्षक
☎ : 9811140360

डॉ. (श्रीमती) विमल महता
संरक्षिका
☎ : 9350266601

अजीत कुमार आर्य
संरक्षक
☎ : 09794113456

श्री शिव दत्त आर्य
संरक्षक
☎ : 9810638622

संजीव कुमार मंगला
कानूनी परामर्शदाता
☎ : 9812271456

समस्त अवैतनिक

मैं

तुम यह न समझो कि कोई मैं गीत सुनाने वाला हूँ।
तुम यह न समझो कि मैं कोई गीत बनाने वाला हूँ।
न मीठी बातें कर कर के तुमको बहकाने वाला हूँ।
तुम यह न समझो कि भटका कर टके कमाने वाला हूँ।
मैं भीषण जीवन में अपने प्रलयकर तूफान लिए हूँ।
देश धर्म पर मर मिटने का मैं स्वणिम अरमान लिए हूँ।
भूले पथ के राही को मैं राड दिखाने आया हूँ।
न फूट डाल इतिहास लिखो मैं यह समझाने आया हूँ।
मेल एकता का दुनिया को पाठ पढ़ाने आया हूँ।
मैं मानव को मानव के फिर गले लगाने आया हूँ।
मैं दुनिया में फैले सब पाखंड मिटाना चाहता हूँ।
एक प्रभु के उपासक मैं तुम्हें बनाना चाहता हूँ।
जगती में मैं छुआ छूत को दूर भगाना चाहता हूँ।
मैं प्राणि मात्र के दुःख को दूर भगाना चाहता हूँ।

सम्पादकीय

अनुशासन

किसी भी क्षेत्र में उन्नति के लिये अनुशासन बहुत जरूरी है। व्यक्ति हो, परिवार हो, समाज हो, संस्था हो या राष्ट्र हो, उनमें जितना-जितना अनुशासन ज्यादा होगा उतना-उतना वह ज्यादा उन्नत होगा। वह परिवार जिन में अनुशासन होता है वह आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं। जहाँ अनुशासन की कमी होती जाती है वहाँ-वहाँ अवनति शुरु हो जाती है। जिस व्यक्ति का अपने ऊपर अनुशासन है वह दूसरों को भी अनुशासन में रख सकता है।

एक बार एक परिवार किसी जगह को छोड़ कर दूर बसने के लिये निकल पड़ा। शाम से कुछ पहले रास्ते के वट वृक्ष के नीचे पड़ाव डाला। परिवार के मुख्यि ने परिवार के एक एक सदस्य को अलग-अलग काम सोंपे। हर एक मुखिया का कहना मान कर काम करने लगा। जिस को तो स्थान को बैठने उठने के साफ करने के लिये कहा, वह तत्परता से करने लगा। जिसको कहा बिस्तरे लगा दो वह बिस्तरे लगाने लगा। जिसको कहा खाना बनाने के लिये चूल्हा चाहिये, वह इधर-उधर से ईंटें इकट्ठी करके चूलाह बनाने लगा, जिसको कहा तूँ लकड़ियाँ ला वह लकड़ियाँ लाने लगा। सब अपने-अपने काम बड़ी प्रसन्नता पूर्वक कर रहे थे, किसी ने भी किसी प्रकार का गिला नहीं किया। वृक्ष पर एक पक्षी बैठा ध्यान पूर्वक देख रहा था और सोच रहा था कि बेचारे बड़ी संजीदगी से मुखिया का कहना मानकर सब काम किये जा रहे हैं पर इनके पास पकाने के लिये तो कुछ है ही नहीं। उससे रहा नहीं गया और वह मुखिया से पूछने लगा कि आप खाना बनाने के लिए सब कुछ करवा रहे हो पर आपके पास बनाने के लिये अन्न इत्यादि तो है नहीं, फिर बनाओगे क्या? तो उसने कहा तुम्हें मारेंगे और पक्षियों को भी मारेंगे और हम मिल बैठकर खायेंगी। पक्षी ने सोचा कि यदि मुखिया ने पक्षीयों को मारने के लिये परिवार के सदस्यों को आदेश दिया तो सचमुच यह मारने लग जायेंगे। तब पक्षी ने कहा मुझे क्यों मारते हो जहाँ पर तुम बैठे हो उसके नीचे बहुत सा धन दबा पड़ा है, इसको निकालो और अपने गाँव में सुख पूर्वक रहो। मुखिया ने उस जगह को खोदने का आदेश दिया। कुछ नीचे खोदने पर दबा हुआ, बहुत बड़ा खजाना मिल गया। उस खजाने को निकाल कर वह गाँव में गये और जा कर जमीन खरीदी, दूध देने वाली गायें खरीदी, अच्छे-अच्छे घोड़े खरीदे और बड़े सुख से रहने लगे। गाँव वालों ने पूछा तुम्हारे पास इतना धन कहाँ से आ गया तो मुखिया ने सारा वृतान्त सच-सच बता दिया। यह सुनकर एक और परिवार भी ऐसा ही करने के लिये उसी वृक्ष के नीचे जा कर ठहरा और उनका मुखिया भी वैसे ही आदेश देने लगा जैसे कि पहले मुखिया ने दिये थे। पर परिवार का कोई सदस्य तो कहना मान रहा था पर ज्यादातर नहीं मान रहे थे। वृक्ष पर वही पक्षी बैठा सब कुछ देख रहा था और उसने मुखिया से पूछा कि तुम्हारे पास खाना बनाने को तो कुछ है नहीं? तो उसने भी पक्षी को कहा कि तुम्हें मार कर खायेंगे। तो पक्षी ने कहा तफमहारे परिवार में अनुशासन नहीं, तुम्हें कोई खजाना नहीं मिलेगा। तुम अपने गांव में वापिस चले जाओ।

जर्मनी का शासक हिटलर जब कई देशों को जीतकर अपने कब्जे में ले चुका था तो जर्मनी की राजधानी बरलिन में हिटलर के साथ योरोप के देशों की मीटिंग चल रही थी तो एक देश के प्रधान मन्त्री ने हिटलर से पूछा कि क्या तुम अकेले सारे योरोप के देशों का मुकाबला कर सकते हो? हिटलर ने उत्तर दिया कि मेरे देश के किसी भी नागरिक को यहाँ आप बुलायें, तो ऐसा ही किया गया - जो नागरिक वहाँ आया उसको हिटलन ने कहा, जाओ इस भवन की सबसे ऊँची छत पर जा कर नीचे छलांग लगा दो, उसने ऐसा ही किया। वह गिरते ही मर गया। हिटलर ने कहा यह अनुशासन ही मेरी शक्ति है।

हमारे देश में संयुक्त परिवारों की परम्परा थी जो आज अनुशासन की कमी के कारण टूट रही है। वैसे भी देश के हर क्षेत्र में अनुशासन की कमी होती जा रही है जो कि चिन्ता का विषय है। यदि हमने उन्नति करनी है तो हमें इस ओर विशेष ध्यान देना होगा।

– सम्पादक

आस्तिकता (ईश्वर-भक्ति) का सच्चा स्वरूप

- स्व. आचार्य प्रेमभिक्षु

आस्तिकता अथवा प्रभु भक्ति को ठीक-ठीक समझने के लिए हम उसे दो रूपों में देख सकते हैं। (अ) ईश्वर-विश्वास (कर्म-काण्ड) प्रधान आस्तिकता (ब) आचार-प्रधान आस्तिकता। उक्त दोनों रूपों में से जब कभी ईश्वर-विश्वास प्रधान आस्तिकता, आचार-प्रधान आस्तिकता को मार कर आगे बढ़ना चाहती है तो कालान्तर में वह अनेकों प्रकार के ढोंग, पाखण्ड, दुराचार और अन्धविश्वासों को जन्म देकर राष्ट्र को अवनति के गहरे गर्त में धकेलने का कारण बन जाती है, भाग्यवाद-आलस्य का रूप ले लेता है, परलोक वाद-कल्पित किस्से कहानियों का और अध्यात्मवाद-जीवन और जगत् से दूर जड़वत् शून्यता का। समस्त पौराणिक काल हमारे इसी पतन की दुःखभरी कहानी है, और तब उसकी प्रतिक्रिया में आचार-प्रधान आस्तिकता का युग आता है। परन्तु वह भी प्रतिक्रिया के आवेश में जब ईश्वर-विश्वास, कर्मफल, पुनर्जन्म, अध्यात्मवाद आदि को मारकर जीवित रहना चाहती है तो कालान्तर में कोरे भौतिकवाद, प्रत्यक्षवाद और शुष्क कर्मवाद की चोटों से मनुष्य की सरस भावनाओं का हनन करके उसे नरपिशाच बना देती है।

यह सही है कि आचार-प्रधान आस्तिकता ही वस्तुतः आस्तिकता का समग्र रूप है परन्तु ईश्वर-विश्वास प्रधान आस्तिकता का महत्व उससे भी कहीं अधिक इसलिए है क्योंकि पहली का आधार ही दूसरे प्रकार की आस्तिकता है। ईश्वर-विश्वास प्रधान आस्तिकता के 'अतिवाद' की प्रतिक्रिया में बुद्ध ने ईश्वर, वेद, पुनर्जन्म आदि को उसमें स्थान नहीं दिया। परिणाम सामने है, बुद्ध के पश्चात् बहुत थोड़े समय में ही बौद्धमत में ईश्वर के स्थान पर बुद्ध को ही ईश्वर बना देने के लिए विवश होना पड़ा। भारतीय इतिहास में मूर्ति-पूजा तथा अवतारवाद की अवैदिक प्रथा का प्रारम्भ यहीं से होता है।

बौद्धयुग की प्रतिक्रिया में पौराणिक काल आया था और आज का युग पौराणिक काल की प्रतिक्रिया के रूप में आया है। इस प्रकार संसार के समस्त मतों का इतिहास आस्तिकता के एक अंग के अतिवाद के विरुद्ध दूसरे अंग की प्रतिक्रिया के अथवा सूक्ष्म और स्थूल के इस संघर्ष से भरा पड़ा है। परन्तु किसी भी एक अंग को ही लेकर चलने वाली आस्तिकता एकांगी है, अपूर्ण है, लंगड़ी है, उल्टा परिणाम लाने वाली है। सच्ची आस्तिकता के लिए उक्त दोनों रूपों का समुचित समन्वय परमावश्यक है। यही वैदिक भक्तिवाद है। वैदिक भक्तिवाद में अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद, प्रत्यक्ष और परोक्ष, लोक और परलोक श्रद्धातत्व एवं तर्कतत्व, भाग्यवाद एवं पुरुषार्थ तथा त्याग और भोगवाद का समुचित सामंजस्य है। सच्ची आस्तिकता न तो आकाश की उड़ान है और न तलातल में डुबकियाँ लगाने के सामन हैं वह तो पृथ्वी के ठोस धरतल पर आकाश की छाया में पलती है।

वैदिक भक्ति या सच्ची आस्तिकता न तो हमें यह सिखायेगी कि 'अरे बच्चा क्या है, संसार तो स्वप्न के समान है। झूठा झगड़ा है, दुनियाँ के सब नाते मिथ्या हैं। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है, इसलिए छोड़ो यह सब झमेला' और न सच्ची आस्तिकता एक मात्र संसार के इन चमकीले और लुभावने पदार्थों में आसक्त होकर मानव-जीवन के उच्चतम लक्ष्य को भूल जाने को कहेगी, वह तो संसार के माध्यम से संसार-पति को पाने का मार्ग है। उसमें तो ऐहिक और पारलौकिक उन्नति के समन्वय रूप धर्म का प्रतिपादन है। 'तेनत्यक्तेन भुञ्जीथाः' और 'योगःकर्मसु कौशलम्' इन सूक्तियों में 'वैदिक भक्तिवाद' का रहस्य छिपा है।

कौन कहता है कि ऐश्वर्य, धन (अर्थ) हेय है, वह साधना के मार्ग में बाधक है। हम तो प्रतिदिन दो बार सायं-प्रातः प्रार्थना करते हैं 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' (हम ऐश्वर्यों के स्वामी बनें) 'भूखे भजन न होय गुपाला' वाली कहावत बहुत-कुछ सारपूर्ण है। उसकी सत्यता को कोरे अध्यात्मवाद के नारों से झुठलाया नहीं जा सकता। परन्तु रुको, ठहरो, जरा भी बहे, कि समाप्त। (तभी तो धर्म-पथ को 'क्षुरस्य धारा' कहा है।) हमें ठीक इसी समय यह भी ध्यान रखना है कि कहीं हम सांसारिक ऐश्वर्यों का समर्थन करते-करते उसी को तो सब कुछ नहीं मान बैठे हैं। धन साधन है, साध्य नहीं तथा संसार के ऐश्वर्यों के ढक्कन के पीछे सत्य छिपा है, इस तथ्य को एक क्षण के लिए भी भूलने का अर्थ है वैदिक भक्तिवाद के स्वरूप को भूलकर आध्यात्मिक मृत्यु को प्राप्त हो जाना, जिस स्थिति में आज हम हैं। इस सम्बन्ध में हमें 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष' इस फल चतुष्टय को समझ लेना अधिक उपयोगी होगा। 'अर्थ'

अर्थात् धनोपार्जन और 'काम' अर्थात् उसका उपभोग-दोनों ही आवश्यक हैं, किन्तु मूल में 'धर्म' हो और उनका लक्ष्य हो 'मोक्ष' प्राप्ति। यह विशुद्ध वैदिक भक्ति मार्ग है।

वैदिक भक्ति हमें सिखाती है कि समष्टि रूप में ब्राह्मण ज्ञान-शक्ति से राष्ट्र के अज्ञान को, क्षत्रिय अपनी क्षात्र-शक्ति से राष्ट्र में अथवा राष्ट्र पर होने वाले अन्याय को, वैश्य अपनी धनोपार्जन कला से राष्ट्र के अभाव को चुनौती देकर और शूद्र उक्त तीनों को अपना पावन सहयोग देकर कर्त्तव्य-भाव से अपने-अपने राष्ट्र धर्म का पालन करें और उनमें से प्रत्येक अपने-अपने कर्त्तव्य कर्मों के द्वारा समान रूप से आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति कर सके। इसी प्रकार व्यष्टिरूप में एक मानव ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों की सफल साधना द्वारा अपने व्यक्तिगत जीवन को समुज्ज्वल बनाते हुए उसे राष्ट्र जीवन के साथ जोड़ सके तो वह सच्चा आस्तिक होगा। अपने-अपने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अखिल विश्व के प्राणिमात्र के प्रति अपने-अपने आश्रम और वर्ण की मर्यादानुसार सम्यक् रूपेण कर्त्तव्य-पालन करना ही ईश्वर भक्ति है।

ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य-पालन का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसको रिझाने के लिए किसी पृथक् कर्त्तव्य-कर्म या अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं। वह खुशामदपसन्द नहीं है। ईश्वर के दरबार में ब्लैक और रिश्वत नहीं चलती। वहाँ तो उपर्युक्त आश्रम और वर्ण मर्यादानुसार यम-नियमों की दिव्य-साधना ही काम आती है। अज्ञान और अविद्या के कारण अथवा ईश्वर-विश्वास प्रधान भक्ति के 'अतिवाद' के कारण आज हमारे देश में फलपरक भक्ति प्रचलित है। मंदिरों में हम भोग-प्रसाद आदि इसलिए रखते हैं अथवा देवी पर बकरा इसलिए काटते और कटवाते हैं अथवा कीर्तन, तीर्थयात्रा, व्रतोपवास इसीलिए करते हैं कि ऐसा करने से हमें धन की या सन्तान की प्राप्ति हो या फिर किसी मुकद्दमें में ही जीत हो जावे। कई विद्यार्थी भी इसलिए भोग-प्रसाद आदि रखते देखे गए हैं क्योंकि वे बिना परिश्रम किए ही परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना चाहते हैं। कैसी विचित्र भक्ति है। गंगा-यमुना का स्नान, तीर्थयात्रा, काशीमरण आदि से मोक्ष प्राप्ति रूप अनेकों मिथ्या माहात्म्य इसी फलपरक भक्ति के ही नमूने हैं। उनसे संसार में घोर पाप और आलस्य ही बढ़ा है और बढ़ रहा है। वस्तुतः यह सब खुशामद ईश्वर के निकट कोई महत्व नहीं रखती। वहाँ तो 'अवश्यामेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' का सिद्धान्त ही चलता है। माफी मुलतबी का कोई प्रश्न ही नहीं। शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य मिलेगा ही। जब ऐसा है तो प्रश्न उठता है कि फिर हम ईश्वर-भक्ति क्यों करें। ईश्वर-भक्ति से क्या लाभ? वस्तुतः उक्त प्रश्न भक्त क्या है और उसका ठीक रूप क्या है, यह न समझने के कारण ही उठता है। यदि हम यह समझ सकें कि केवल प्राणि मात्र के प्रति अपने कर्त्तव्य-कर्मों का सम्यक् पालन ही (न कि कोई अन्य विशेष अनुष्ठान) सच्ची प्रभुभक्ति है, तो यह प्रश्न ही नहीं पैदा होता। तब तो हम विचारेंगे कि मानव-पूजा ही सच्ची ईश्वर-पूजा है। मछिनर के भीतर स्थापित कल्पित ईश्वर की मूर्ति की अपेक्षा मन्दिर के बाहर की चौखट से प्रताड़ित मानव मूर्ति (अछूत) की उपासना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। दरिद्र दुःख भंजन आर्त्त मानवता की सेवा तथा व्यवहार की शुद्धता और सात्विकता ही सच्चा यजन, भजन और पूजन है। काश! हमारा देश आस्तिकता के इस आचार-प्रशान रूप को ठीक-ठीक समझ सकता।

परन्तु इसे ठीक-ठीक समझने पर भी सत्यता से निभा सकने के लिए सजग ईश्वर-विश्वास, अनन्त आत्म-बल, आत्म-निरीक्षण दृढ़ पुरुषार्थ, विनम्रता, निर्भयता सब प्राणियों में स्वात्मवत् भावना आदि गुण अपेक्षित हैं। उक्त गुणों को प्राप्त करने, कुसंस्कारों के मल को धोकर सुसंस्कारों को जागृत करने तथा पापों के कारण रूप अभिमान और अवमान की भावना को मिटाने के लिए यह परम आवश्यक है कि मनुष्य अपना सम्बन्ध शक्ति के महान् स्रोत प्रभु से स्थापित करे। यही भक्ति का ईश्वर-विश्वास प्रधान स्वरूप है। भक्ति का यह रूप जिससे साधक में उक्त गुणों का विकास होकर वह लोक-संग्रह कार्य में प्रवृत्त होता है, भक्ति का चिरंतन, शाश्वत और सार्वभौम स्वरूप है।

वैदिक भक्तिवाद में पंच महायज्ञों का विधान विशेषतः इसी उद्देश्य से किया गया है। 1. ब्रह्मयज्ञ (संध्या), 2. देवयज्ञ (हवन), 3. पितृयज्ञ (जीवित माता-पिता एवं गुरुजनों की सेवा), 4. अतिथियज्ञ (आप्त विद्वानों, निष्काम देशभक्तों की सेवा), 5. भूतयज्ञ (प्राणिमात्र के प्रति सद्‌भावना) यही पंच महायज्ञ हैं। इनमें से सन्ध्या-आस्तिकता के ईश्वर-विश्वास प्रधान रूप से सम्बन्धित है तथा शेष महायज्ञ आचार-प्रधान रूप से। सन्ध्या से साधक अपने प्यारे प्रभु की गोद में बैठा हुआ आत्म-निरीक्षण करते हुए मानव जीवन के उद्देश्य पर विचार करता है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने,

समाज तथा प्रभु के प्रति जो उसका कर्त्तव्य है उसका पालन करने के लिये वह कृत-संकल्प होता है। सन्ध्या के मन्त्रों द्वारा प्रभु की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हुए साधक उन मन्त्रों में गुंथे हुए दिव्य सन्देश को अपने क्रियात्मक जीवन में ढालने के लिए संकल्पशील होता है। प्रातः-सायं सन्ध्या में बैठा हुआ साधक मानो सुरक्षित किले में बैठे हुए उस सिपाही के समान है जो 'निश्चिन्त भाव से अपने दिन भर के संघर्ष क्षेत्र का चित्र तैयार करता है, पिछले दिन की भूलों के प्रति सावधानी बरतने का निश्चय करता है और कर्मक्षेत्र में उतर पड़ता है। सायंकाल पुनः किले में वापस आकर अपने कर्त्तव्य कर्मो की समीक्षा करता है। इस क्रम से साधक नित्यशः अपने लक्ष्य के समीपतर होता जाता हैं सन्ध्या के 19 मन्त्रों को केवल मात्र दुहरा लेने वाले सज्जन सन्ध्या के इस रहस्य और मन्त्रों में सन्निहित अलौकिक आनन्द को कहाँ समझ सकते हैं?

देवयज्ञ द्वारा जहाँ साधक व्यक्तिगत हितों को राष्ट्र हित के लिए आहुत कर देने का महान् सन्देश प्राप्त करता है, वहीं वह अपने शरीर द्वारा फैलाई हुई दुर्गन्ध को दूर करने के लिए किसी अंश में वायुमंडल को सुगन्धित कर अपने मनुष्यता रूप धर्म् का पालन भी करता है। इसी प्रकार पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और भूतयज्ञ द्वारा अपने 'स्व' का उत्तरोत्तर, विकास करता हुआ व 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ करता है; अर्थात् उसका जीवन यज्ञमय हो जाता है। संसार से कम से कम लेकर अधिक से अधिक देने की पवित्र भावना उसके जीवन का एक आवश्यक अंग बन जाती है। ऐसा कर्मशील मनुष्य जीवन-मुक्त होकर अपने समस्त व्यवहारों को अनासक्त भाव से एवं 'वसुधैवकुटुम्बकम्' के आदर्श से अनुप्राणित होकर करता है। यही 'गुर' विश्वशान्ति का मूल है।

पंच महायज्ञ ही ईश्वर-भक्ति या आस्तिकता का सर्वांगीण स्वरूप हैं आस्तिकता के दोनों रूपों का सम्यक् समन्वय इनमें मिलता है। अतः पंच महायज्ञों का श्रद्धापूर्वक पालन करना एक आर्य (श्रेष्ठ मनुष्य) का नित्य कर्म है। भगवान् मनु ने इसके विषय में कहा है-

ब्रह्मयज्ञम्, देवयज्ञम्, पितृयज्ञम् व सर्वदा।
नृयज्ञम् अतिथियज्ञम् च यथाशक्तर्न हापयेत्।।

जो मनुष्य (स्त्री-पुरुष) इनके व्यावहारिक रूप को समझकर इन्हें अपने जीवन (दिनचर्या) में स्थान देते हैं वही सच्चे अर्थों में ईश्वर भक्त हैं। भारत को आज ऐसे ही ईश्वर-भक्तों की आवश्यकता है। इसी भावना से प्रेरित हो यह लघु प्रयास ईश्वर-भक्तों के चरणों में सादर समर्पित है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) में प्रवेश प्रारम्भ

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युगप्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र ब्रजभूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराजा श्री महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय नारायण स्वामी जी की तपस्थली गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही विद्यार्थी को कक्षा-6 एवं 7 में ही योग्यतानुसार प्रवेश दिया जा सकता है अथवा जिस विद्यार्थी को अन्य विषयों के साथ-साथि अष्टाध्यायी न्यूनतम चार अध्याय कण्ठस्थ होगी, वह विद्यार्थी प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर कक्षा-8 में भी प्रवेश पा सकता है।

गुरुकुल में प्राच्य व्याकरण के साथ-साथ अन्य सभी विषयों का गहनता से अध्ययन कराया जाता है। अतः छात्र का मेधावी होना आवश्यक है, इसलिये अभिभावक मेधावी, सुशील विद्यार्थी को ही प्रवेशार्थ लायें।

गुरुकुलीय परिवेश पूर्णतः वैदिक संस्कारों से परिपूर्ण है, इसके साथ ही भोजन, आवास एवं अध्ययनादि की व्यवस्था भी अति उत्तम है, आर्यजन इसका लाभ उठाकर अपनी संतानों को शिक्षित, सक्षम, संस्कारवान्, चरित्रवान् एवं राष्ट्रभक्त तथा ऋषिभक्त बनाकर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

बालक ब्रह्मचर्य व्रतधारें, धर्म कर्म भरपूर करें।
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारे, मोह महातम दूर करें।।
युक्ति प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकनाचूर करें।
पन्थ न पकड़ें मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें।।
सरल सुलक्षण सन्तानों को, संयमशील सुजान करो।
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या बल धन दान करो।।

आचार्य स्वदेश — कुलपति
आचार्य हरिप्रकाश — प्राचार्य
चलभाष : 9456811519 9457333425, 9837643458

पं॰ गुरुदत्त विद्यार्थी

- डा. भवानी लाल भारतीय

लोकसेवा के महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए लम्बी आयु प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। यदि पुरुषार्थी व्यक्ति जीवन के आरम्भ में ही अपने कार्य और पुरुषार्थ की रूपरेखा निश्चित कर ले, तो थोड़े समय में ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाता है। यह तथ्य आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वान्, वेदादि शास्त्रों के अप्रतिम प्रवक्ता, तथा धर्मप्रचार के लिए पराकाष्ठा की लगन रखनेवाले पं॰ गुरुदत्त विद्यार्थी के जीवन से सिद्ध होता है। पं॰ गुरुदत्त का जीवन छब्बीस वर्ष की अल्पावधि का ही था, तथापि इस अत्यन्त संक्षिप्त काल में उन्होंने अध्ययन, लेखन, संगठन तथा धर्मप्रचार का जो कार्य कर दिखाया, वह शतायु-भोगी लोगों के लिए भी ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाला है।

पं॰ गुरुदत्त का जन्म 26 अप्रैल 1864 को मुलतान के लाला रामकृष्ण के यहाँ हुआ। अध्ययन में इनकी रुचि बाल्यकाल से ही थी, अतः मुलतान से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर, उच्चतर अध्ययन के लिए वे लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में प्रविष्ट हुए। यह जनवरी 1881 की घटना है। आर्यसमाज मुलतान के सभासद् तो वे 1880 में ही बन गए थे।

जब 1883 में स्वामी दयानन्द के रुग्ण होने के समाचार आर्यसमाज लाहौर में आए, तो इस समाज के अधिकारियों ने लाला जीवनदास एवं पं॰ गुरुदत्त को स्वामीजी की सेवा-सुश्रूषा के लिए अजमेर भेजने का निश्चय किया। 19 वर्ष के इस युवक को महाप्राण दयानन्द के जीवन का अन्तिम दृश्य हिलाकर रख गया। उन्होंने देखा कि किस प्रकार एक आस्तिक एवं लोकहित के लिए समर्पित महापुरुष, अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त करने के पश्चात् किस निर्भीकता के साथ अपनी आत्मा को सर्वात्मा से मिलाने के लिए तत्पर हैं दयानन्द के परिनिर्वाण के इस अभूतपूर्व दृश्य ने पं॰ गुरुदत्त के मन और मस्तिष्क पर बड़ा अनोखा प्रभाव डाला।

स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् लाहौर के आर्यसमाजियों ने अपने आचार्य की स्मृति को चिरजीवित रखने के लिए 'दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलेज' के नाम से एक विद्यालय की स्थापना का निश्चय किया। इस शिक्षण-संस्था के संस्थापकों में पं॰ गुरुदत्त विद्यार्थी का नाम भी महत्वपूर्ण है। डी.ए.वी. कॉलेज के लिए धन-संग्रहार्थ जो प्रतिनिधि-मण्डल देश के अनेक नगरों में गए, उनमें पं॰ गुरुदत्त की भूमिका सार्थक तथा सराहनीय रही। इस कार्य के लिए वे दिल्ली, अलीगढ़, बरेली, मुरादाबाद, लखनऊ, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, फर्रुखाबाद आदि अनेक नगरों में गए। वहाँ से पर्याप्त धन एकत्र किया। संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) के अतिरिक्त उन्होंने पंजाब के अनेक नगरों में भी भ्रमण किया। कॉलेज के लिए धन-संग्रह करने के अतिरिक्त उन्होंने वैदिक विषयों पर प्रवचन भी किये। उनके प्रवचनों की सर्वत्र प्रशंसा होती थी।

पं॰ गुरुदत्त ने 'विज्ञान' विषय लेकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उन दिनों उच्च शिक्षित भारतीयों के लिए सरकारी सेवा में प्रवेश पा लेना कोई कठिन कार्य नहीं था। किन्तु पं॰ गुरुदत्त की ऐसे किसी काम में रुचि नहीं थी जो उनके सार्वजनिक जीवन तथा आर्यसमाज की सेवा में बाधक बने। एक बार तो उन्हें अतिरिक्त सहायक कमिश्नर के लिए होनेवाली परीक्षा में बैठने की सलाह भी दी गई, किन्तु गुरुदत्त की रुचि प्रशासनिक कार्यों की अपेक्षा, अध्ययन-अध्यापन में अधिक थी। 1887 में जब गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर के विज्ञान के प्रोफेसर ओमन अवकाश पर गए, तो पं॰ गुरुदत्त को अस्थायी रूप से उनके स्थान पर रख लिया गया। 1889 में वे डी.ए.वी. कॉलेज में अवैतनिक रूप से गणित तथा विज्ञान पढ़ाने लगे।

पं॰ गुरुदत्त द्वारा रचित साहित्य

पं॰ गुरुदत्त का संस्कृत एवं अंग्रेज़ी भाषा पर असाधारण अधिकार था। यद्यपि उन्हें किसी गुरु के चरणों में बैठकर संस्कृत का विधिवत् अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला था, किन्तु मात्र स्वाध्याय के बल पर ही उन्होंने पाणिनीय व्याकरण पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लिया। वैलेण्टाइन-लिखित 'संस्कृत व्याकरण के सरल पाठ' नामक प्रारम्भिक व्याकरण की पुस्तक उन्होंने मुलतान में हाईस्कूल में पढ़ते समय ही समाप्त कर डाली थी। पं॰ गुरुदत्त का पाणिनीय शास्त्र पर इतना अधिकार हो गया था कि व्याकरण पढ़ने के लिए आयु में उनसे अधिक बड़े स्वामी अच्युतानन्द, स्वामी स्वात्मानन्द, स्वामी महानन्द तथा स्वामी निजात्मानन्द नामक चार संन्यासियों ने तो उनसे विधिवत् 'अष्टाध्यायी' सीखी थी।

अब पं॰ गुरुदत्त ने 'दि रीजेनेटर ऑफ आर्यावर्त' नामक पत्र निकालना आरम्भ किया। इसमें उनके 'वेद और वेदार्थ',

'आर्य सभ्यता और दर्शन', 'ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त' आदि विषयों पर कुछ गम्भीर लेख छपे। 1888 में 'वैदिक संज्ञा विज्ञान' (The Terminology of the Vedas) नामक उनका महत्वपूर्ण समीक्षामूलक लेख छपा, जिसे उन्होंने अपने आचार्य तथा इस (19वीं) शताब्दी के एकमात्र वैदिक विद्वान स्वामी दयानन्द की स्मृति में समर्पित किया। इसी क्रम में दूसरा निबंध The Terminology of the Vedas and European Scholars (वैदिक संज्ञा विज्ञान तथा यूरोपीय विद्वान्) प्रकाशित हुआ। इसमें प्रो. मैक्समूलर तथा प्रो. मोनियर विलियम्स आदि द्वारा किये गए वेदार्थ की त्रुटियों की विवेचना है। उनके इन ग्रन्थों को वैदिक क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति मिली। 'वैदिक संज्ञा विज्ञान' को तो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में डिग्री कक्षा की पाठ्यपुस्तक के रूप में स्थान मिला।

पं॰ गुरुदत्त ने उपनिषदों की सुगम, किन्तु सारगर्भित व्याख्याएँ लिखीं। ईश, मुण्डक तथा माण्डूक्य-इन तीन उपनिषदों पर पं॰ गुरुदत्त के व्याख्यात्मक ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुए। 'वैदिक टैक्स्ट्स' (Vedic Texts) शीर्षक से उन्होंने कतिपय वेद-मंत्रों के वैज्ञानिक अर्थ भी किये। इनमें से प्रथम 'The Atmosphere' शीर्षक है जिसमें ऋग्वेद (1/2/1) के मंत्र 'वायवा याहि दर्शतेमे' की व्याख्या है। द्वितीय 'The Composition of Water' (जल की संरचना) शीर्षक है जिसमें ऋग्वेद के मंत्र (1/2/7) 'मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्, धियं घृताचीं साधन्ता' की व्याख्या है। इस मंत्र में प्रयुक्त मित्र और वरुण को पं॰ गुरुदत्त ने ओषजन (Oxygen) तथा नत्रजन (Nytrogen) का वाचक माना है तथा दोनों के मिश्रण से जल की उत्पत्ति बताई है। Vedic Text का तीसरा भाग 'गृहस्थ' शीर्षक है जो ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के पचासवें सूक्त के प्रथम तीन मंत्रों का व्याख्यान है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वेद और वैदिक विषयें पर किये गए आक्षेपों का उत्तर देने में भी, पं॰ गुरुदत्त की लेखनी ने कभी प्रमाद नहीं किया। उन्होंने मोनियर विलियम्स के ग्रन्थ 'भारतीय प्रज्ञा' (The Indian Wisdom) की आलोचना लिखी तथा पादरी टी. विलियम्स द्वारा नियोग-प्रथा पर किये गए आक्षेपों का उत्तर दिया। इसी पादरी ने जब वेदों में मूर्तिपूजा के अस्तिम्व को लेकर कुछ भ्रमात्मक बातें लिखीं, तो पं॰ गुरुदत्त ने उसका सटीक उत्तर दिया।

फ्रैडरिक पिन्कॉट नामक एक अंग्रेज़ लेखक के वेद-विषयक विचारों की समीक्षा भी उन्होंने लिखी थी। कतिपय दार्शनिक विषयों पर उनके गम्भीर निबंध, इस तथ्य के परिचायक हैं कि गूढ़ तथा जटिल विषय की विवेचना करना उनके लिए कितना सहज था। 'The Realities of Inner Life', 'Evidences of the Human Spirit' आदि उनके निबंध इसी कोटि में आते हैं। पं॰ गुरुदत्त के अंग्रेज़ी भाषा पर सहज अधिकार और उनकी विषय-विवेचना-शक्ति को देखकर बड़े-बड़े विद्वान् भी मुग्ध रह जाते थे।

बौद्धिक क्षमता तथा कर्मठता में पं॰ गुरुदत्त बेमिसाल थे, किन्तु उनका निजी जीवन सर्वथा अनियमित था। उन्होंने स्वास्थ्य की ओर कभी ध्यान नहीं दिया, यद्यपि अपने विद्यार्थी-काल में वे नियमित व्यायाम करते रहे थे। शरीर को कष्ट देने में वे सुख अनुभव करते, और गर्मी तथा सर्दी में, ऋतु-नियमों के प्रतिकूल आचरण करते। भोजन भी उनका अनियमित तथा नितान्त अल्प होता था। उनके सहपाठी तथा मित्र लाला लाजपतराय ने उनकी अनियमित जीवन-शैली पर पर्याप्त विस्तार से लिखा है। निरन्तर भाषण, लेखन तथा सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण पं॰ गुरुदत्त का स्वास्थ्य खराब हो गया। वे राजयक्ष्मा के शिकार हो गए।

स्वास्थ्य-सुधार के लिए वे पर्वतीय स्थल मरी (पाकिस्तान) भी गए किन्तु स्वास्थ्य में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ। अब उनके जीवन का संध्याकाल आ गया था। डॉ. नारायण दास और जालंधर के हकीम शेर अली की चिकित्सा ने कुछ दिनों तक उनके जीवनदीप को स्थिर रक्खा, किन्तु पं॰ गुरुदत्त के शरीर की दुर्बलता जिस सीमा तक पहुँच चुकी थी, उससे उबरना कठिन था। अन्ततः 19 मार्च 1890 को इस युवा मुनि का देहान्त हो गया।

लाला लाजपतराय ने अपने इस मित्र तथा सहयोगी को श्रद्धांजलि देते हुए उन्हें असाधारण व्यक्तित्व का धनी, सच्चा, गम्भीर, संस्कृत का पारगामी विद्वान् तथा ऋषियों की परम्परा का उत्तराधिकारी बताया। पं॰ गुरुदत्त ने ऋषि दयानन्द के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' का अठारह बार अध्ययन किया। इसके प्रत्येक पारायण ने उन्हें नवीन जानकारियाँ प्रदान की थीं। 'आर्य पत्रिका' (लाहौर), 'ट्रिब्यून' (लाहौर), 'दि ट्रू लाइट' (एक ईसाई पत्र), 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट' (लाहौर) जैसे पत्रों ने इस युवा मनीषी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। सर सैयद अहमद खाँ द्वारा स्थापित ऐंग्लो मुहम्मडन कॉलेज (वर्तमान में अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी) के मुख पत्र 'अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गज़ट' ने भी अपने 25 मार्च 1890 के अंक में पं॰ गुरुदत्त के निधन पर अपार दुःख व्यक्त किया। ■

क्रमशः

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज का योगदान

– ले. आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री

भारती स्वतंत्रता....

'इटावा के कलेक्टर एलन ओ. ह्यूम ने जब मेरठ का समाचार सुना तो उसने इटावा के चारों ओर की सड़कों पर पहरा देने के लिये एक टुकड़ी तैयार की, यह समाचार सुनकर ह्यूम और डेनियल कुछ सिपाहियों के साथ उन्हें पकड़ने उस मछिनर में पहुँचे, यह देखकर ह्यूम साहब वहाँ से भाग खड़े हुये, सिपाहियों की इस उदारता का लाभ उठाकर क्लेक्टर ह्यूम ने भी भारतीय स्त्री के भेष में किसी तरह भागकर जान बचाई, इन्हीं ह्यूम साहब ने आगे चलकर कांग्रेस की स्थापना में मुख्य भाग लिया।

(अठारह सौ सत्तावन पृ. 78-79 ले. श्री बालाजी राव हर्डीकर)

इसी प्रकार और भी कई प्रमाण अनेक मान्यता प्राप्त एवं प्रामाणिक इतिहासकारों के उपलब्ध होते हैं, इन उदाहरणों से सामाश्यमति मनुष्य भी इस परिणाम पर पहुँच सकता है कि जिस व्यक्ति की इतनी दुर्दशा हुई हो कि उसे अपनी जान बचाने के लिए एक स्त्री का वेष धारण कर भागना पड़ा हो, तो क्या दूरमति अंग्रेज-जाति में उत्पन्न इस व्यक्ति ने अपने इस अपमान के प्रतिकार के लिये समर्थ होते हुये भी कुछ भी प्रयास न किया होगा? अंग्रेज जाति की मानस वृत्ति को देखते हुए इसके स्पष्टीकरण के लिए विचारशील पुरुषों को और अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है, ऐसे व्यक्ति के द्वारा कालान्तर में कांग्रेस की स्थापना के मूल में क्या भारत की भलाई की आशा की संभावना की जा सकती है? इसलिए अपने शैशवकाल में कांग्रेस का उद्देश्य भारत को स्वाधीन करना न होकर केवल कुछ इने-गिने व्यक्तियों को नौकरियों तथा प्रतिष्ठित पद दिलाकर संतुष्ट करना मात्र था। सन् 1885 में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में हुआ। उस समय अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए श्री डब्ल्यू.सी. बनर्जी ने कहा था कि मैं सब उपस्थित जनों के मत को प्रकट कर रहा हूँ। जब मैं कहता हूँ कि अंग्रेजी सरकार को मेरी और यहाँ बैठे मेरे मित्रों की अपेक्षा अधिक गहरे मित्र और पक्के राजभक्त मिलना असम्भव है।

(भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास पृ. 86)
(ले. इन्द्र विद्याबाचस्पति)

इसी प्रकार जब 1886 में कलकत्ता में कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन हुआ तब भी अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए दादाभाई नौरोजी ने शब्दभेद से इन्हीं भावों को प्रकट करते हुए कहा था 'हमें वीर पुरुषों की तरह घोषणा करनी चाहिए कि हमारी नसों में राजभक्ति भरी हुई है, हम उन लाभों को समझते हैं जो हमें अंग्रेजी राज्य से मिले हैं और अन्त में बोलते हुए आपने कहा था 'हमें इंग्लैण्ड की अन्तरात्मा पर विश्वास करना चाहिये।

(भारतीय-स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास पृ. 86
ले. इन्द्र विद्यावाचस्पति)

कांग्रेस की नींव कुछ अंग्रेजों ने डाली है और अंग्रेज पक्के देश-हितैषी हैं, उन्होंने इस डर से कि कहीं शिक्षित हिन्दुस्तानी कोई गहरा राजनैतिक आन्दोलन इंग्लैण्ड के विरुद्ध न उठायें, हिन्दुस्तानी शिक्षित समुदाय को यह काम सौंप दिया है कि वे साल भर में दो-तीन व्याख्यान देकर और समाचार-पत्रों में अपनी प्रशंसा पढ़कर चित्त प्रसन्न कर लें। उनकी यह सम्मति थी कि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा से स्वदेशी के प्रचार से और गुप्त रीति से हथियारों के प्रयोग करने से अपने-आपको बलवान् बनाना चाहिए और उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए, जब उनको अंग्रेजों को निकालने के लिए पर्याप्त शक्ति और जनसमूह प्राप्त हो जाये, साधारण तौर पर लाहौर के आर्यसमाजी नेताओं की यही राय थी। (आर्यसमाज का इतिहास भाग 1 पृ. 301)

ये ज्वलन्त प्रमाण किसी टीका-टिप्पणी के अपेक्षा नहीं रखते, विचारशील विवेकी पुरुष इन प्रमाणों के प्रकाश में ज्ञानचक्षु खोलकर देखें कि कांग्रेस के मूल में उस समय क्या भावना कार्य कर रही थी।

एक भ्रम और उसका निराकरण

आर्यजगत् लोहपुरुष अमर शहीद स्व. श्रद्धानन्द जी महाराज ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी है, जिसकेपृष्ठ 70 पर निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं, 'शायद इन्हीं दिनों स्व. मि. ह्यूम कांग्रेस की स्थापना के लिए आन्दोलन करने लाहौर आये थे, मुझे ज्ञात हुआ कि जिस किसी सुशिक्षित हिन्दुस्तानी से भी वह मिलना चाहते वहाँ से

ही उन्हें निराश होना पड़ता, न जाने कैसे मि. ह्यूम को यह निश्चय हो गया कि जो शक्ति हिन्दुस्तानियों को उनसे मिलने नहीं देती वह राय मूलराज एम.ए. के रूप में है। शिक्षक दल में यह प्रसिद्ध हो रहा था कि मि. ह्यूम ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के गुप्तचर हैं, जो हिन्दुस्तानियों को किसी जाल में फंसाने को आये हैं, परमात्मा के सिवाय कौन जान सकता है, कि इसमें राय मूलराज की भी शक्ति कार्य कर रही थी या नहीं? और इसके लिए कोई विश्वासजनक साक्षी भी नहीं है, किन्तु मि. ह्यूम ने वह चिरस्मरणीय चिट्ठी ला. साईदास को लिख दी जिसका स्मरण पं. गुरुदत्त जी ने मेरे सामने उक्त लाला जी को तीन वर्षों पश्चात् कराया था, उस चिठी में मि. ह्यूम ने यह लिखा था कि उनके माननीय मित्र स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज का सभासद राय मूलराज एम.ए. जैसा व्यक्ति नास्तिक कैसे हो सकता है?"

इस सन्दर्भ को पढ़कर सर्वसाधारण को यह भ्रम हो सकता है कि मि. ह्यूम ऋषिवर दयानन्द सरस्वती के परम मित्रों में अन्यतम थे, अतः वे भारत के हितसम्पादनार्थ ही कांग्रेस की स्थापना करने का विचार रखते थे, परन्तु इस दृष्टि से इस पर चिन्तन करने का उक्त सन्दर्भ में दिये वचनों के साथ बड़ा भारी विरोध उपस्थित होगा, इसमें एक गूढ़ रहस्य प्रतीत होता है जैसा कि उपरोक्त के सन्दर्भ में भी लिखा है कि मि. ह्यूम भारतीयों को अपने किसी जाल में फंसाने को आये थे, क्योंकि वे ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के गुप्तचर थे, मि. ह्यूम के सम्बन्ध में तत्कालीन शिक्षित भारतीय जनसमूह में इस प्रकार की सन्देहपूर्ण भावना का फैलना भी कोई कम अर्थ-भरा नहीं है, इससे प्रतीत होता है कि इसमें कोई गूढ़ रहस्य अवश्यमेव निहित है, मि. ह्यूम की यह चाल देशभक्त आर्यसमाजियों की सतर्कता एवं समझदारी के कारण सफल नहीं हो पा रही थी, चूंकि राय मूलराज भी सरकार से सम्बन्धित होने के कारण सरकार की इस गुप्त चाल से अपरिचित हों ऐसा भी नहीं कहा जा सकता और उनके रहते मि. ह्यूम को अपनी इस कूटनीति की सफलता की पूर्ण सम्भावना न थी, इसलिये उसने आर्यसमाज में प्रतिष्ठा पद को प्राप्त किया तथा विशेष प्रभाव रखनेवाले राय मूलराज को आस्तिक घोषित करने का कूटनीतिक विचार किया हो। इस प्रकारप्रशंसा के द्वारा अपने पक्ष में करने का प्रयास किया हो, इसका एक पक्ष यह भी हो सकता है कि सरकारी व्यक्ति होने के कारण राय मूलराज भी भारतीयों को अंग्रेजों का मानसिक दास बनाने का श्रेय लेकर अंग्रेजों की दृष्टि में अपना महत्व बढ़ाना चाहते हों, जब उसने मनोवांछित क्षेत्र में मि. ह्यूम कार्यकरके प्रसिद्धि प्राप्त कर सरकारी नज़रों में चढ़ने लगे हों, तब राय मूलराज उन्हें यह सारा ही श्रेय लूटतेदेखकर सहन न कर सकने के कारण उनके मार्ग में बाधक बनकर खड़े हो गये हों, ऐसी स्थिति में मि. ह्यूम ने प्रशंसा द्वारा राय मूलराज को अपने अनुकूल बना अपना मार्ग निर्बाध एवं निष्कण्टक बनाया हो, सम्भवतः इसी कारण ऋषि दयानन्द सरस्वती को अपना मित्र घोषित किया हो, जिससे कि भारतीय और विशेषकर देशभक्त आर्यसमाजी उसके इस चक्रव्यूह में फंस सकें।

अस्तु, कुछ भी हो किन्तु यह तो एक कटु तथा यथार्थ सत्य है कि मि. ह्यूम जैसा सन्दिग्ध तथा भारत का गूढ़ शत्रु राष्ट्रवादी महर्षि दयानन्द सरस्वती की विशुद्ध हार्दिक मित्रता का पात्र हो यह जंचने वाली बात नहीं है। ■

महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा, हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रही है।

– स्वातन्त्र्य वीर सावरकर

Auth. Distributor
Sleepwell
Sleepwell

परदे ही परदे गददे ही गददे

Singhal Furnishing

J.K. Singhal
S.K. Singhal

(Auth. Sleepwell Gallery)

Deals in : All kinds of S/W Mattress, Cushions, Pillows, Flooring Carpets, Curtains, Sofa's Clothes, Sofa Materials & Blinds.

Near Aggarwal Dharmshala, Nathu Colony, Chawla Colony, Ballabgarh-121004

Ph. : (O) 0129-2244905, J.K. : 9911706903, S.K. 9891305902

व्यापार-व्यवहार

- स्वामी स्वतन्त्रतानन्द

भारत के व्यापारियों की शिकयात पूर्वी अफ्रीका में कई स्थानों पर कर्णगोचर हुई। भारत में आकर भी ऐसे शब्द सुनाई देते हैं। इस विषय को सर्वथा असत्य मानना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

अब प्रश्न होगा, यदि यह सत्य है, तो इस का उपाय क्या है? मेरी सम्मति में देश के लिये व्यापार अत्यन्त आवश्यक हैं व्यापार हीन देश अवनति के खात में अवश्य गिरता है। वेद में व्यापार द्वारा धन वृद्धि की प्रार्थना है। यथा-

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तन्मे भूयो भवतु माकनीयो। (अ. 3/15/5)

धन से धन का इच्छुक जिस धन से व्यापार करता है उस से धन में वृद्धि हो, न्यूनता न हो।

यह सारा सूक्त ही व्यापार विषयक है।

व्यापार में सब से अधिक सदाचार की आवश्यकता है। सत्ययुक्त व्यापार ही सदाचार की कोटि में प्रविष्ट होगा। असत्ययुक्त व्यापार प्रपंच चोर के व्यवहारवत् दुराचार है। दुःख से लिखना पड़ता है, इस समय प्रत्येक व्यापारी यही कहता है-'सत्य से व्यापार होता ही नहीं।' व्यापारियों की यह धारणा ही सत्य के न पालन का हेतु है।

महर्षि दयानन्द जी ने व्यवहार भानु में इस विषय पर गाथा लिख कर सिद्ध किया है कि व्यापार में सत्य का ही पालन करना चाहिये। ऋग्वेद में भी लिखा है।

जहि न्यत्रिणं पणिं वृकोहि षः।

जो व्यापारी दूसरों को खाता है अर्थात् ठगता है, उनके साथ सत्य का व्यवहार नहीं करता, उनसे दाम अधिक लेता है। उन को वस्तु कम देता है। उस को मारो, कोडे मारो, जान से मारो, दण्ड से मारो क्योंकि वह वृक है। अर्थात् जिस प्रकार वृक (भेड़िया) अजा अवि को मार कर खाता है, इसी प्रकार वह साधारण प्रजा को, जिन को हिसाब नहीं आता है, ठगता है, खाता है।

एक उपाय इसका दण्ड है। दूसरा उपाय यह है कि उनका जीवन धर्ममय बनाया जाए ताकि वह इस ठगने को बुरा समझ कर अपने आप सद्व्यवहारी हो जाएँ।

आर्यसमाज में जिला रोहतक निवासी भक्त फूलसिंह हुए हैं। वे प्रथम पटवारी थे। उस समय वह घूस लेते थे। कई वर्ष के पश्चात् वह आर्यसमाजी बने। जिस समय उन्होंने 'घूस लेना पाप है' ऐसा सत्यार्थप्रकाश द्वारा जाना, उस समय उन को दुःख हुआ, उन्होंने नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और अपने ग्राम में आकर अपनी भूमि गिरवी रख दी और उस से जो धन मिला वह उन व्यक्तियों को दिया जिनसे पहले किसी समय घूंस ली थी। उनसे क्षमा मांगते हुए प्रार्थना की 'आप मूल धन ले लें मैं वृद्धि (सूद) नहीं दे सकता, वह छोड़ दें।

उस के ऐसा करने का हेतु केवल धर्मभाव ही था। आजकल समाचार पत्रों में श्रीमान रामकिशन डालमिया की चर्चा है। और वे कहते हैं कि मैं प्रथम धन कमाने में सत्य का व्यवहार न करता था, मैं ठगी युक्त (ब्लैकमार्कीट) व्यापार करता था। किन्तु अब नहीं, हवेलीराम जी के सत्संग से मुझे बोध हुआ। इस लिये मैंने ठगी युक्त व्यापार को तिलांजलि दे दी है। इस समय मैं ओर व्यापारियों को भी कहता हूँ, वे भी मेरी भाँति ठगी का व्यापार छोड़ दें और सत्यता युक्त व्यापार करें। उनका कथन तो ठीक है, परन्तु जो धन उन्होंने कूट व्यापार द्वारा संग्रह किया है। क्या वह उस के लिये भी कोई प्रायश्चित करना चाहते हैं। अथवा बातें ही करेंगे। यदि अंतिम पक्ष है तो जब तक उनका व्यवहार जैसा वह कहते है। सिद्ध न हो, उस समय तक कुछ कहना कठिन है। अभी तो यही कह सकते हैं, "देखें ऊँट किस करवट बैठता है।"

सन्त चरण दास जी ने ऐसे व्यापारियों के विषय में एक पद्य अपने ग्रन्थ में लिखा है। उन का जन्म एक व्यापारी के गृह में हुआ, उन्होंने पहली आयु में व्यापार किया और अन्य व्यापारियों को देखा। इस कारण उनका यह अनुभूत विषय था। उनका पद्य निम्न प्रकार है।

प्रगट चोर चौराहे बैठा बाणिया माण मारे
वापक सापक, तराजू तेगे, कलमकरद, लगासारे।।
तोले हुकता, झोले झुकता, हंसता हंसता बोले।
परको हरता नहीं डरता, शाह पदी के ओहले।।
प्रपंच ठाणे, राम न जाणे, समता साच न भावे।
ठग जन चोर महाजन वाजे येही अचरज आवे।।

वह उन व्यापारियों को चोर कहते हैं। जो मार्ग जाने वाले अर्थात् ग्राहकों को लूट रहे हैं। साथ ही लिखते हैं यह परमात्मा को नहीं जानते, इनका नाम स्मरण आदि सब प्रपंच है। अन्त में लिखते हैं। सब से बड़ा आश्चर्य यही है कि यह हैं तो ठग किन्तु लोग इन को महाजन कहते हैं।

अब भारत स्वतन्त्र है, स्वतन्त्रता प्राप्त भारत में ठगी का व्यापार शोभा नहीं देता। अब देश में सत्य का व्यवहार होना चाहिये। जैसे वैश्यों को सत्य का व्यवहार करना चाहिये वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब को इसी मार्ग पर चलना चाहिये।

विपद्-कसौटी

- मुरारी लाल शर्मा

रहिमन कबहूँ न सराहिए, लेन-देन की रीत।
विपद्-कसौटी जे कसे, तेही साँचे मीत।। - रहीम

ख़्वाजा मुहम्मद सुल्तान, फ़रग़ाना के हाकिम शेख़ उमर मिर्ज़ा का एक विश्वासपात्र और स्वामिभक्त नौकर था। शेख़ ने बूढ़े मुहम्मद सुल्तान के शाहज़ादे बाबर को सेहूँ नदी की उपजाऊ घाटी में भ्रमण कराने का काम सौंप दिया था। मुहम्मद सुल्तान एक दिन बाबर को सैर कराने के लिए ले जाने लगा तो मुहम्मद के बेटे ज़रदाद ने भी साथ चलने का हठ किया। मुहम्मद सुल्तान दोनों लड़कों को लेकर सेहूँ नदी की ओर चला। नदी के किनारे पहुँचकर बच्चे खेल में मग्न हो गए और बूढ़ा मुहम्मद सुल्तान एक हरे-भरे वृक्ष के सहारे कमर लगाकर बैठ गया।

मुहम्मद सुल्तान अपने विचारों में ऐसा मग्न था मानो वह किसी बड़ी भारी चढ़ाई के विषय में विचार कर रहा हो। अकस्मात् उसने नदी की ओर दृष्टि डाली। देखता क्या है कि दोनों बच्चे खेलते-खेलते कुछ दूर निकल गए हैं। वह गर्दन झुकाकर फिर ध्यानावस्थित हो गया।

नदी में कोई चीज़ बहती हुई आते देख बाबर ने कहा-''ज़रदाद! देखो, नदी में कोई चीज़ बहती हुई आ रही है। कदाचित् यह कोई सुन्दर जानवर है, जिसे किसी निर्दयी ने मारकर नदी में फेंक दिया है। आओ, तनिक पास चलकर देखें।''

यह सुनकर ज़रदाद का ध्यान भी नदी की ओर गया और वह बोला-''हाँ-हाँ बाबर! मैं भी देखता हूँ कि कोई वस्तु बहती हुई हमारी ओर आ रही है।''

यह चीज़ पेड़ की एक हरी शाखा थी जो पानी के अन्दर पड़ी हुई बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थी। बच्चों ने इस हरी शाखा को पानी से निकालकर उससे खेलने की ठानी। यह शाखा ज़रदाद के समीप थी, इसलिए इसे निकालने के लिए ज़रदाद ने नदी में हाथ डाल दिया। दनी का किनारा ढालू था, इसलिए ज़रदाद अपने-आपको सँभाल न सका और पानी में हाथ डालते ही सेहूँ नदी में डुबकी लेने लगा।

ज़रदाद को डूबता देख बाबर चिल्लाया-''बाबा! दोड़ो-दौड़ो, ज़रदाद नदी में गिर पड़ा।'' यह कहते ही बाबर अपने प्राणों का मोह त्याग स्वयं भी नदी में कूद पड़ा और नदी की वेगवती धारा को चीरकर ज़रदाद तक पहुँचने की चेष्टा करने लगा।

बाबर की चिल्लाहट सुनकर पेड़ के नीचे ध्यानावस्थित बैठा मुहम्मद सुल्तान भी चौंक उठा। उसने ज्योंही अपनी दृष्टि नदी के किनारे पर डाली तो नदी के किनारे के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न पड़ा। बुड्ढा एकदम घबराकर उठा और दुर्बल होता हुआ भी बड़ी तेज़ी से भागकर नदी के किनारे पहुँचा। जब चारों ओर दृष्टि डालने पर भी बालक दिखाई न पड़े तो उसे निश्चय हो गया कि वे अवश्य नदी में गिर पड़े हैं। वह लड़खड़ाती और भर्राई हुई आवाज़ से पुकारने लगा-''ए मेरे प्यारे बच्चो! किधर हो?''

बाबर ने बुड्ढे की आवाज़ सुनकर उत्तर दिया, ''बाबा! जल्दी आओ, मैंने ज़रदाद को पकड़ लिया है। ऐसा न हो कि देर हो जाए और यह मेरे हाथ से छूट जाए।''

यह सुनते ही मुहम्मद सुल्तान नदी में कूद पड़ा और तैरता हुआ बड़ी कठिनाई से बाबर तक पहुँचा। बाबर ने इस समय और भी अधिक साहस और फुर्ती से काम लिया। उसने बायें हाथ से ज़रदाद को थामकर अपना दाहिना हाथ उचककर मुहम्मद सुल्तान के पटके में डाल दिया।

अब मुहम्मद सुल्तान तैरता हुआ किनारे की ओर चला। दोनों लड़के एक-दूसरे से कसकर लिपटे हुए थे। मुहम्मद सुल्तान ने तट के समीप पहुँचकर एक पेड़ की जड़ का सहारा लिया और दोनों लड़कों को किनारे के ऊपर फेंक दिया।

मुँह और नाक में पानी भरने के कारण ज़रदाद मूर्च्छित हो गया था। मुहम्मद सुल्तान ने ज़रदाद को अपने घुटनों पर लिटाकर उसके मुँह और नथनों से पानी निकाला। तब कहीं ज़रदाद को होश आया।

मुहम्मद सुल्तान ने बाबर से कहा, ''बहादुर बच्चे! तूने मेरे बच्चे की जान बचाई है, इसके बदले में मैं सदा तुम्हारे लिए अपनी जान न्यौछावर करने को तैयार रहूँगा। परमात्मा की कृपा से तुम मुझे सदा अपनी प्रतिज्ञा पर अटल पाओगे।''

इसी समय ज़रदाद ने सिर उठाकर धीमी आवाज़ से कहा, ''नहीं-नहीं बाबा! यह मेरा कर्तव्य है। यह भलाई मेरे साथ की गई है। मैं जीवन भरबाबर का कृतज्ञ रहूँगा। मैं आज अल्लाह परवरदिगार को हाज़िर-नाज़िर जानकर अपनी जान बचाने वाले के सामने कसम खाता हूँ कि ज़िन्दगी भर बाबर के लिए जान निछावर करने में भी आनाकानी न करूँगा।

परन्तु बाबर ये सब बातें बड़े खेद के साथ चुपचाप सुन रहा था। वह अपने आपको अधिक न रोक सका और बोला, ''आप लोग क्या कह रहे हैं? अपने पड़ोसी की मदद करना हर इन्सान का फर्ज़ है। इन्सान की जाँच करने के लिए मुसीबतें तो कसौटी हैं। क्योंकि मैंने सिर्फ अपना फर्ज निभाया है, इसलिये मैं कोई भी बदला पाने का हकदार नहीं।''

वीरों के मुख से ऐसे ही शब्द शोभा देते हैं। ■

विदुषी सुलभा

(आदर्श जीवन झांकियाँ)

राजा जनक प्रायः धर्म सभाएँ लगाया करते थे। एक दिन वे ऋषि-मुनियों, विक्षनों सभासदों तथा प्रजा के लोगों सहित यज्ञ सभा में बैठे थे। अचानक एक सन्यासिनी सभा में निःसंकोच आकर खड़ी हो गई। वह सन्यासिनी सुन्दर, स्वस्थ, सबल, दिव्य और तेजस्विनी थी। उसके हाथ में दण्ड-कमण्डलु थे।

कुछ समय पश्चात् राजा जनक बोले, 'हे देवी! तुम कौन हो? मेरी यज्ञ सभा में इस विचित्र वेश में क्यो आई हो और कहाँ से आई हो? तुमने मेरे चित्त को चंचल कर दिया है।' वह देवी बोली, अनेक विद्वानों, महात्माओं के मुख से तुम्हारी महिमा सुन मैं तुम्हारे दर्शनार्थ सभा में आई हूँ। तुम मेरा परिचय चाहते हो तो सुनो, 'मैं किसी ब्रह्म ऋषि की कन्या नहीं हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ। मेरा नाम सुलभा है। अपने अनुरूप वर न मिलने पर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके मोक्ष धर्म में दीक्षित हुई, और संन्यासिनी के वेष में संसार में रहकर विचरती हूँ। तपस्विनी के रूप में भय-शंका रहित होकर विचरती हुई अपने पिता की आज्ञा से तुम्हारी सभा में आई हूँ।' वह पुनः बोली, 'हे राजन्! अनेक विद्वानों से सुना था कि राजा जनक आत्मदशर्री और ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, सांसारिक ऐश्वर्यों में उनकी रुचि नहीं है, देह में स्थित हुआ भी विदेह है, त्रिगुणमयी माया से सर्वथा अतीत है, भेदबुद्धि रहित समभाव है। परन्तु हे राजन्! मैंने तुम्हें इसके विपरीत पाया।' तुमने मुझ से कहा कि मैंने तुम्हारे चित्त को चंचल कर दिया है। किन्तु मैंने तुम्हारे किसी अंग को छुआ तक नहीं फिर भी तुम्हारा मन मुझे देख चंचल हो उठा। इससे यही सिद्ध होता है कि तुम्हारा मन स्थिर नहीं है। तुम्हारा मन अभी तक विकारी है।' जिस पुरुष ने सब प्रकार की इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है वह 'आत्मवत् सर्वभूतेषू' देखता है। जैसे जब नट नाट्य करता है उस समय भी वह पुरुष है और जब उस देश को त्याग देता है तब भी वह पुरुष है। उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता।

'तुमने पूछा, तुम किस की पुत्री हो, कहाँ से आई हो, और मेरी सभा में क्यों आई हो'? हे राजन् जिसकी स्थिति प्रतिक्षण बदलती हो, जिसकी एक सी अवस्था न हो, वह कैसे कहे कि मैं कौन हूँ, तथा कहाँ से आई हूँ। हे विदेह! ध्यान से देखो जिस विश्वात्मा परमात्मा के तुम हो उसी का सब संसार बना है। तो मैं अपने को किसकी कहूँ।

माता-पिता के रजवीर्य के मेल से शरीर बनता है। नवें महीने में जन्म लेकर वह कुछ चिन्हों से स्त्री-पुरुष कहलाता है। तब वह शरीर ही बाल्यावस्था से क्रमानुसार बढ़कर यौवनावस्था प्राप्त कर वृद्धावस्था में पहुँचता है। इन तीन अवस्थाओं के पश्चात् पुराने शरीर का अन्त तथा एक नये शरीर की प्राप्ति होती है।

परन्तु इन अवस्थाओं का जो साक्षी है, वह देह से भिन्न वस्तु है। वह अनादि, सूक्ष्म, सुसत्ता तीनों कालों में एक रस तथा अमर्त्य है, अखण्ड है, अजर है, अमर है। वह आत्मा प्रकृति के विकारों से रहित पूर्ण स्वतंत्र है। आकाश से लेकर भूमि पर्यन्त सृष्टि का रचने वाला परमेश्वर है। उसी में यह जगत् स्थित है। वहाँ कौन किसका है, कहाँ से आया है, इसका उत्तर मैं क्या दूँ?

तुमने पूछा-मेरी सभा में क्यों आई हो? हे राजन् किसकी सभा? किसका मन्दिर? यह राज्य मन्दिर भूतकाल में तुम्हारा नहीं था, भविष्य में भी तुम्हारा नहीं रहेगा। वर्तमान में भी तुम इसके स्वामी नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे इस राज्य में आधे की स्वामिनी तुम्हारी पत्नी है। राजाओं को स्वतंत्रता नहीं कि अपनी इच्छा से कोई कार्य कर सकें। तो बताओ सभा कैसी हुई?

हे राजन्! ज्ञान के सदृश पवित्र करने वाली कोई वस्तु संसार में नहीं है। उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए तुम्हें अभी आन्तरिक सत्ता को स्थायी बनाना होगा। उस विदुषी देवी के ज्ञान का महत्व स्पष्ट करने वाले वचनों को सुन राजा जनक के रोंगटे खड़े हो गए। उनका शरीर कांपने लगा। जो अपने को विदेह मानते थे उसका अभिमान मिट गया।

गुरु याज्ञवल्क्य भी ब्रह्मवादिनी सुलभा के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मज्ञान प्राप्त सुलभा को धन्य-धन्य कहने लगे।

■

वीरांगना सती रानीबाई

- डा. अशोक आर्य

मध्यकालीन भारत की प्रथम सती नारी, जिसने देश की अन्य नारियों के सामने देश व जाति की रक्शा के लिए, धर्म की स्थापना के लिए हंसते हंसते कष्ट मार्ग पर चलने का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उस ने देश की ही नहीं विश्व की नारियों के सामने एक उदाहरण रखा कि भारतीय नारी विशेष रूप से राजरानी किस प्रकार अपना सब कुछ धर्म की बलिवेदी पर कितनी सरलता से भेंट चढ़ा सकती है, यदि स्वयं को अग्निदेव के पास भी समाप्त करने के लिए प्रस्तुत करना पड़े तो उससे भी इस नारी ने कभी चिन्ता नहीं की तथा अपना सर्वस्व लुटाने के लिए सदा तत्पर रही है। भारत पर प्रथम मुस्लिम आक्रमण कारी का प्रतिरोध करने वाले राजा दाहिर की पत्नि तथा राजरानी 'वीरांगना रानीबाई' एसी ही नारियों में प्रमुख स्थान रखती हैं।

बगदाद के खलीफा के आदेश से सन् 712 इस्वी में मुहम्मद बिन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया। यह किसी मुसलमान का भारत पर प्रथम आक्रमण था, जो मध्यकाल में भारत पर हुआ। सर्व प्रथम उसने देबल पर आक्रमण किया, यहाँ उसने भारी तबाही मचाई, नगर को अपने कतलेआम से उजाड़ कर रख दिया तथा मन्दिर को लूट कर उसको अपवित्र कर दिया। यहाँ से चलकर वह नैरन पहुँचा। वहाँ से उसने अपनी योजना को गति देने के लिए तैयारी की। नैरन सिन्ध नदी के निकट होने के कारण यहाँ से भारत में प्रवेश करने के लिए नदी को पार करना आवश्यक था। इस कारण इसने यहाँ रहते हुए एक विशाल बेडा तैयार करवाया तथा इस की सहायता से सिन्ध नदी को पार करने की तैयारी आरम्भ कर दी। उधर राजा दाहिर को भी इसके आगमन का पता चल चुका था तथा उसने भी युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। दाहिर की राजधानी आलोर नामक नगर में होते हुए भी उसकी इच्छा रावार के दुर्ग में सुरक्षित रहते हुए इस दुर्ग से भी प्रतिरोध करने की थी। इस योजना को कार्यरूप देते हुए वह पुत्र जयसिंह तथा राजरानी रानीबाई को लेकर रावार के इस किले में चला गया। (कहा तो यह भी जाता है कि इस राजरानी का नाम लाडी था। हो सकता है कि उसे प्रेम से लाडी भी कहा जाता हो किन्तु चाचनामा के लेखक इसे रानीबाई के नाम से ही स्वीकार करते हैं।) यहाँ पर दाहिर ने अपने ठाकुरों के सहयोग से भयंकर युद्ध किया। युद्ध भूमि में दाहिर ने खूब शत्रू का संहार किया, वह युद्ध के क्षेत्र में ही हाथी से उतर कर युद्ध करने लगा, किन्तु दुर्भाग्य से वह मारा गया। दाहर की सेना बड़ी वीरता से शत्रु से जूझती रही।

पति की मृत्यु का समाचार पाकर रानी रानीबाई का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। देखते ही देखते इस भारतीय नारी ने, राजा दाहिर की महिषी ने भी म्यान से तलवार खींच ली। इस सम्बन्ध में चाचनामा में उल्लेख किया गया है कि पन्द्रह सहस्र सेना की सहायता से रानी ने कासिम पर आक्रमण कर दिया तथा शत्रु सेना को गाजर मूली की भान्ति काटने लगी। ज्यों-ज्यों रानी लड़ती हुई आगे बढ़ रही थी, त्यों-त्यों ही उसके सैनिकों की वीरता भी बढ़ती जाती थी। उनका उत्साह भी निरन्तर बढ़ रहा था। वह वीर सैनिकों का उत्साह बढ़ाते हुए उन्हें ललकार रही थी कि वीरो आगे बढ़ो, हमारी इस वीर प्रस्विनी भारत भूमि से धर्म द्रोहियों को खदेड़ना है। यहाँ से उसे निकाल बाहर करना है। यह प्रत्येक आर्य का परम धपर्म है। हमने धर्म की रक्षा करनी है। गौ, ब्राह्मण तथा आर्य धर्म की रक्षा से ही हम विश्व के सभ्य राष्ट्रों के सम्मुख अपनी उन्नत सभ्यता व विश्व को गौरवान्वित करने वाली संस्कृति का वर्णन करने में समर्थ होंगे। इस प्रकार उत्साह से भरी यह सेना शत्रु को गाजर-मूली की भान्ति काट रही थी किन्तु भाग्य को कुछ और ही मन्जूर था। शत्रु सेना किले में प्रवेश करने में सफल हो गई।

किले पर शत्रु का आधिपत्य होते देख राजरानी को अपना आगामी निर्णय लेने में एक क्षण भी न लगा। राणी ने तत्काल किले की सब नारियों को एक स्थान पर एकत्र कर कहा कि इस किले पर गो हत्यारों का कब्जा हो गया है। हमारी स्वाधीनता लुट गयी है। हम दासत्व का जीवन नहीं जी सकते। हम अपना सतीत्व भंग करवा कर तथा पराधीन रह कर अजीवित रहें, यह हमें स्वीकार नहीं है। हमारे पति अब इस संसार में नहीं है।। वह हमारी प्रतीक्षा स्वर्ग में कर रहे हैं। हम वीर नारियों को अपना धर्म निभाना है। उस धर्म पर चलते हुए हमें शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करना है।

इस विवर्ण का वर्णन चाचनामा में बड़े विस्तार से किया गया है। इस के वर्णन के अनुसार वहाँ उपस्थित हिन्दु रमणियों ने रानी की हाँ में हाँ मिलाते हुये विश्वास दिलाया कि हम अग्निदेवता को अपना सर्वस्व भेंट कर शहीद होने को तैयार हैं।

भारतीय परम्परा के अनुरूप देखते ही देखते एक विशाल अग्निकुंड, हवनकुण्ड तैयार किया गया। रक्तिम वस्त्र, वसन्ती वस्त्र, लाल वस्त्र धारण कर सब से पूर्व राजरानी धधकती चिता में हँसते हँसते कूद गई। धधकती आग में उसकी शिखाएँ आकाश से बातें करने लगीं। यह आर्य बाला आर्य विजयी की प्रतिनिधी की भान्ती अपने पति के श्री चरणों में स्वर्ग सिधार गयी। अपनी रानी के जोहर को देख अन्य नारियाँ कैसे पीछे रह सकती थीं? उन्होंने भी उनका अनुगमन किया तथा अपनी रानी के साथ ही लम्बी यात्रा पर न समाप्त होने वाली यात्रा पर चल दीं। इस प्रकार आलोर ही नहीं रावार भी अपनी तेजस्विनी सती रानी के स्वर्ग गमन पर शमशान में बदल गये। वह रानी मध्यकालीन ही नहीं आगामी इतिहास के लिये नारियों की एक प्रकार की मार्ग दर्शक बन गईं। वह एक आदर्श पत्नि, धर्म परायण नारी, वीर योद्धा, कुशल सैन्य संचालक तथा रजोचित गुणों से सम्पन्न थी। जब तक यह सूर्य व चान्द चमकते रहेंगे, तब तक राजरानी का नाम इतिहास के पन्नों में स्वर्ण की भान्ति चमकता रहेगा। ■

कृपया ध्यान दें :-

उन सभी ग्राहकों से निवेदन है, जिनका पत्रिका का वार्षिक शुल्क समाप्त हो चुका है, वे अपना शुल्क शीघ्र, अतिशीघ्र भेजें तथा जिन ग्राहकों को पत्रिका नहीं मिल रही वे कृपया अपना पूरा पता, पिनकोड और मोबाइल नं. साफ–साफ लिख कर भेजें जिससे उन्हें समय पर पत्रिका पहुँच सकें।

– सम्पादक।

Arya Convent School

Near 100 Ft. Road, Sec.-55, Jeevan Nagar, Faridabad

The School : Neat & Clean Campus, Educated and dedicated Promotors, Transport Facility from nearby areas, Permanently recognised and affliated to Haryana Board, Special emphasis on Spoken English, Ultra modern teaching aids, including projectors, Library with all relevant material.

Director
Sanjay Arya
9212307856

Principal
Rajni Arya
9212307852

जैसा होगा अन्न, वैसा होगा मन

- प्रो. शामलाल कौशल

सभी जीवधारियों की तरह मनुष्यों को भी जीवित रहने के लिए कुछ ना कुछ खाना पीना पड़ता है। पहले समय में लोग वनों, पहाड़ों, गुफाओं तािा नदियों के निारों पर रहते थे। वे लोग सीधे सादे थे, कंदमूल, फल, फूल आदि खाकर गुज़ारा करते थे। कुछ लोग आश्रमों में कुटियाएँ बना कर रहते थे, गायें पालते थे तथा उनका दूध, दही, मक्खन, छाछ आदि इस्तेमाल करते थे। उनमें से अधिकांश सात्विक प्रवृत्ति के होने के कारण ऋषि, मुनि, साधु, संत, योगी, ज्ञानी, ध्यानी आदि होते थे। उनके विचार तथा कार्य शुद्ध होते थे। उनके रोम-रोम में अहिंसा, प्रेम, वात्सल्य, करुणा, क्षमा, ममता आदि विद्यमान थे। तभी ही तो वे वेद, पुराण, गीता, गुरु ग्रंथ साहेब आदि शिक्षाप्रद ग्रन्थों की रचना कर सके। हम उन्हें आज भी याद करके उनकी पूजा करते हैं। लेकिन कुछ लोग तामसी प्रवृति के भी थे जो पशु-पक्षियों का शिकार करके उनको मार कर उनका मांस कच्चा या भून कर खाते थे। उनमें हिंसा, हत्या, क्रोध, अहंकार, कामवासना, कृतघ्नता, इर्ष्या, बलात्कार, युद्ध आदि कूट-कूट कर भरे होते थे। सात्विक तथा तामसिक प्रवृति वाले लोगों में आपस में वर्चस्व की लड़ाई चलती रहती थी। राम और रावण, कृष्ण और कंस, कौरवों और पांडवों आदि में युद्धों का होना सात्विक तथा तामसिक प्रवृत्ति में टकराव का ही परिणाम है, जिस पर उनके द्वारा प्रयोग किये गये अन्न का ही प्रभाव माना जा सकता है। कहावत मशहूर है, ''जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन।''

आजकल लोग मांस, मछली, अंडे, पीज़ा, बर्गर, हॉट डॉग तथा अन्य मादक पदार्थों का प्रयोग करने लगे हैं। छोटे-छोटे बच्चों में मैग्गी, पीज़ा आदि प्रयोग करने का क्रेज़ बढ़ता जा रहा है। जवान लड़के तथा लड़कियाँ रेव पार्टियों में मांस, मछली, ब्राउन शूगर आदि प्रयोग करके उछलकूद करने लगे हैं तभी तो इनमें से अधिकांश में असहनशीलता, क्रोध अहंकार, आवेग, हिंसा, हत्या, बलात्कार, चोरी, बड़ों के प्रति अवज्ञा तथा अवमानना आदि दोष प्रबल होते जा रहे हैं। पशुओं को मारकर खाने वाले लोगों की प्रवृत्ति भी पशुओं, जैसी हो जाती है। देश में बढ़ते बलात्कार तथा गैंगरेप के मामले गलत प्रकार से प्राप्त अन्न के प्रयोग का प्रभाव ही तो है। जबकि शाकाहारी व्यक्ति शांत, परिपक्व, संयमी, सत्यवादी, संतुष्ट, मितभाषी, मृदुभाषी, अहिंसक, दूरदर्शी, सात्विक विचारों वाला तथा सद्गुणी होता है। कई लोगों को यह भ्रम होता है कि मांसाहारी तथा मद्यपान करने वाला ज्यादा बलिष्ठ होता है। पूछा जा सकता है कि श्री राम चन्द्र जी, हनुमान जी, लक्ष्मण जी, चक्रधारी श्रीकृष्ण तथा पांडव जैसे बलवान् तथा शूरवीर योद्धा शाकाहारी होते हुए भी क्या अपने समय के किसी भी शूरवीर योद्धा से पीछे थे। यह उनके द्वारा खाये गये अन्न का ही प्रभाव था।

'जैसा खाओगे अन्न, वैसा होगा मन' इस पर केवल इस बात का असर ही नहीं पड़ता कि हम शाकाहारी हैं या मांसाहारी बल्कि इस बात का भी असर पड़ता है कि हमारे द्वारा खाये जाने वाला अन्न इमानदारी, परिश्रम, समर्पित भावना, धैर्य तथा लगन से कमाये हुए धन से प्राप्त होता है या नहीं। अगर हमने उपयुक्त भावना से धन कमाकर प्राप्त अन्न स्वयं तथा अपने परिवार को खिलाया है तब हमारे में अच्छे संस्कार, कर्त्तव्यपरायणता, निष्ठा, देशभक्ति, परहितभावना, संतोष, धैर्य, सच्चाई, माता-पिता, गुरुजनों, बुजुर्गों, स्त्रियों, बच्चों, कमज़ारों तथा अनाथों के प्रति सद्भावना तथा कतर्व्यनिष्ठा ज्यादा होगी और अगर हमारे द्वारा खाया हुआ अन्न भ्रष्टाचार, कामचोरी, बेईमानी, मिलावट, चोरी, डकैती, वैश्यावृति, दूसरों का हक मारकर, सरकारी सम्पति पर अवैध कब्जा करके कमाया हुआ है तो परिवार में क्लेश, कलह, तामसी विचार, झूठ, कपट, बेईमानी, बुजुर्गों, महिलाओं तथा बच्चों के प्रति अनादर, अवहेलना तथाअवज्ञा देखने को मिलेगी। संस्कारविहीनता प्रबल होती जायेगी। अपवाद तो सभी जगह हो सकते हैं। आजकल अधिकांश परिवारों में जो रात दिन आपसी अविश्वास, मारधाड़, गाली ग्लौच, तनाव, अनैतिकता, मद्यपान, जुआ, मांस सेवन, विवाहेत्तर सम्बन्ध आदि बढ़ते जा रहे हैं उसका मुख्य कारण गलत तरीके से प्राप्त धन से खरीदकर खाया हुआ अन्न ही हो सकता है। आजकल के गेरूए, लाल तथा सफेद वस्त्र धारण करने वाले तथाकथित संत, महंत, बाबे तथा कथित जगतगुरु आदि जो अमर्यादित व्यवहार करके जो शर्मिंदगी कमा रहे हैं वह भी बेईमान, लोभी, भ्रष्ट, मिलावट करने वाले लोगों द्वारा उन्हें दिल खोलकर दिये गये दान, चंदे, जमीनों, वस्त्रों, अन्न तथा अन्य सुविधाओं का ही परिणाम हो सकता है।

अतः यह कहावत व्यर्थ नहीं है कि 'जैसा होगा अन्न, वैसा होगा मन'। अपने मन में पैदा होने वाले विचारों को ध्यान में रखकर आप अपने आपसे पूंछे कि आप कैसा अन्न खा रहे हैं?

■

अब तक दीपक नहीं जलाया

(प्रेरणा प्रद धर्म कथाओं से)

वारेन हेस्टिंगस के जमाने में गंगा गोविन्द सिंह उनके प्रधान सहकारी थे। गंगा गोविन्द सिंह का अत्याचार इतिहास प्रसिद्ध है। उन्होंने प्रजा को काफी लूटा था और धन से कोष भरा था।

कृष्ण चन्द्र सिंह उन्हीं के पौत्र थे और यह उड़ीसा के दीवान थे और मौज-शौक के जीवन बिताते थे।

एक दिन वह अपनी जमीदारी का काम देखकर घर लौट रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक लड़की को अपने पिता से यह कहते सुना, "बाबूजी! रात हो गई, पर अब तक दीपक नहीं जलाया गया, चलो मैं दीपक जला लूँ।" लड़की इन सहज शब्दों का विलास वैभव में लीन युवक कृष्णचन्द्र सिंह पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके हृदय में अपूर्व भाव जाग उठा, उन्होंने सोचा, "लड़की ने कितनी अच्छी बात कही, मेरी जवानी बीत रही है, जीवन की शाम निकट आ रही है, तो भी मैंने अभी तक अपने हृदय में ज्ञान रूपी दीपक नहीं जलाया। मुझे भी भयानक भवसागर से पार जाना है, पर मैंने अभी तक कोई तैयारी नहीं की।

बस, इन विचारों के आते ही वे संसार को त्याग करके वृन्दावन चले गये और वहाँ लाला बाबू के नाम से प्रसिद्ध हुए और अपनी सम्पत्ति परोपकार में लगा दी, स्वयं मधुकरी माँग कर जीवन-निर्वाह करने लगे।

एक साधारण सी घटना ने उनकी जीवन यात्रा के पथ को बिल्कुल बदल दिया। ■

महर्षि दयानन्द सेवाधाम ट्रस्ट, सैक्टर 7, फरीदाबाद

सर्वे सन्तु निरामयाः

प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र महर्षि दयानन्द सेवा धाम ट्रस्ट (पंजीकृत) आर्य समाज सैक्टर 7ए, फरीदाबाद (हरि.) चिकित्सालय में सभी प्रकार की बीमारियों का इलाज पंच तत्वों (मिट्टी, पानी, धूप, हवा, आकाश) के माध्यम से किया जाता है। किसी प्रकार की दवाई का प्रयोग नहीं किया जाता है।

आर्य समाज की प्रमुख गतिविधियों में से एक प्राकृतिक चिकित्सा लगभग दस वर्षों से निरन्तर ही समाज के लोगों को निरोगी करती चली आ रही है।

महिला तथा पुरुषों के इलाज की अलग-अलग व्यवस्था है। सक्षम तथा कुशल स्टाफ समाज की सेवा में कार्यरत हैं।

निराश न हों तथा जीर्ण रोगों के इलाज के लिए सम्पर्क करें।

नोट : साढे तीन वर्षीय एन.डी.डी.वाई. डिप्लोमा कोर्स के लिए सम्पर्क करें।

– चिकित्सा अधिकारी डा. विजेन्द्र सिंह (सागर जी), दूरभाष : 9210291284

आदर्श श्रद्धाञ्जली एवं बलिदान स्मृति संकल्प

सार्वदेशिक आर्य वीर दल के प्रचार मन्त्री व अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं मधुर वाणी से लोगों पर जादू सा असर डालने वाले श्री चाँदसिंह आर्य के नेतृत्व व बाढ़ड़ा क्षेत्र के प्रमुख धर्मप्रचारक महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त सिद्धान्त शिरोमणी श्री धर्मपाल आर्य 'धीर' शास्त्री भाण्डवा के मार्गदर्शन में बाढ़डा-लोहारु क्षेत्र में तीन विशेष कार्यक्रम दिनांक 18 जनवरी 2013 को हुए जो इस क्षेत्र में वैदिक ज्योति को घर-घर पहुँचाने में ऐतिहासिक साबित होंगे। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

आदर्श श्रद्धाञ्जली - बाढ़डा उपमण्डल के लाड गांव में अवैध शराब की बिक्री को बंद करवाने गांव को शराब मुक्त बनाने के पवित्र संकल्प को हृदयंगम करने वाले निडर, साहसी युवक श्री पारस को पिछले दिनों 7 जनवरी को गांव के ही कुछ शराबी तस्करों ने धोखे से मौत के घाट उतार कर जघन्य जुल्म किया। क्षेत्र के सब धार्मिक व सामाजिक लोगों ने रोषपूर्वक प्रदर्शनों के माध्यम से जुल्म के खिलाफ आवाज उठाई। इसी बीच 16 जनवरी को श्री चाँदसिंह आर्य, प्रचारमन्त्री सार्वदेशिक आर्य वीर दल व श्री धर्मपाल आर्य 'धीर' शास्त्री भाण्डवा बलिदानी युवक के घर शोक संवेदना हेतु गए। शोकाकुल परिजनों को सांतवना के उपरान्त श्री चाँदसिंह आर्य ने उपस्थित जनसमूह से नशामुक्ति अभियान में प्राणों की आहुति देने वाले स्व. श्री पारस को सच्ची श्रद्धाञ्जली देने के लिए अपने जीवन में हर प्रकार के नशों को तिलाञ्जली देने के लिए मार्मिक प्रेरणा की, जिससे अनेक लोगों ने नशा छोड़ने व पारस के रास्ते पर चलने का संकल्प लिया।

18 जनवरी को आयोजित शांतियज्ञ में भी श्री चाँदसिंह आर्य ने उपस्थित जनसमूह से नशा छोड़ने की संकल्प आहुति डलवाई व श्रद्धाञ्जलि सभा को सम्बोधित करते हुए बलिदानी पारस की स्मृति में ''आर्यवीर पारस व्यायामशाला'' बनाने के लिए प्रेरित किया, जिसमें पारस के भाइयों व ग्रामिणों ने काफी उत्साह दिखाया।

बलिदान स्मृति संकल्प : आर्य जगत के उद्‌भट्ट विद्वान प्रो. राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने आर्य वीर दल भिवानी के उत्साही कार्यकर्त्ता मनोज आर्य घसौला के माध्यम से लोहारू क्षेत्र और भिवानी जिले के आर्यो को संदेश भेजा कि 29 मार्च 1941 को लोहारू में आर्य समाज के जलूस पर नवाब लोहारू द्वारा करवाए गए हमले में घायल वीर सन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज व अन्य घायल हुए आर्यों की स्मृति में 'बलिदान स्मृति दिवस' इस वर्ष लोहारू में मनाओ।

बलिदानियों की तड़प को अपनी अमर लेखनी व ओजस्वी वाणी के माध्यम से आर्य जगत में प्रसारित करने वाले वैदिक मिशनरी का संदेश जब लोहारू और आस-पास के आर्यो को मिला तो उन्होंने इसे अपना सौभाग्य माना तथा उत्साह व प्रसन्नतापूर्वक 'बलिदानियों का स्मृति दिवस' मनाने के लिए 18 जनवरी को श्री धर्मपाल आर्य 'धीर' शास्त्री भाण्डवा की अध्यक्षता में आर्य समाज मन्दिर लोहारू में महत्वपूर्ण बैठक बुलाई। जिसमें 28 से 30 मार्च 2013 तक आर्यवीर चरित्र निर्माण शिविर 31 मार्च 2013 को 'स्वामी स्वतन्त्रानन्द बलिदान स्मृति दिवस' आर्य समाज मन्दिर लोहारू में मनाने का निश्चय हुआ। बैठक में उपस्थित आर्यो को युवा हृदय सम्राट चामहत्वपूर्णदसिंह आर्य ने इस तरह प्रेरित किया कि वे समारोह को सफल बनाने के लिए तन-मन-धन से सहयोग देने, शिविर में आर्य वीरों को लाने व क्षेत्र के प्रत्येक आर्य को इस कार्यक्रम से जोड़ने के लिए तैयार हो गए। आर्य समाज लोहारू के प्रधान कै. राम कुमार आर्य, सतनाली, वैद्य विक्रमपाल आर्य शास्त्री बादल, राजेन्द्र आर्य सरपंच नांगल, रामफ आर्य भाण्डवा, नरेश लोहारू, बीरबल शास्त्री, झुप्पा कलां, कुलदीप आर्य ढ़िघावा, देवदत्त आर्य रूदड़ौल, बलवान आर्य शास्त्री, नांघा, रामनिवास आर्य बेरला, राजेश कुमार, सोमवीर झुप्पा कलां, प्रवेश आर्य बाढ़डा, कुलदीप आर्य बाढ़डा, रोहताश आर्य लोहारू, सन्दीप आर्य काकड़ौली हुक्मी, रवि आर्य बाढ़डा, नरेश आर्य महराणा, जसवन्त मन्दौली, धर्मवीर आर्य भाण्डवा, जयसिंह आर्य लोहारू, संजय आर्य भूंगला आदि उपस्थित आर्यों ने समारोह के लिए लगभग 71,000/- इकहेतर हजार रुपये दान देकर आयोजकों का उत्साह बढ़ाया। वेद प्रचार मण्डल भिवानी के अध्यक्ष रामफल आर्य भाण्डवा के नेतृत्व में समारोह से पूर्व दस दिन वेद-प्रचार यात्रा निकालने का निर्णय हुआ।

ऐतिहासिक बैठक : आदर्श श्रद्धाञ्जलि सभा व लोहारू में बलिदान स्मृति संकल्प के उपरान्त 'आर्य समाज, आपके द्वार' अभियान के तहत आर्यो का दल आर्यनगर पहुँचा। आर्य नगर के आर्यो की ऐतिहासिक बैठक 18 जनवरी को चलता-फिरता आर्य समाज चाँदसिंह आर्य की अध्यक्षता

में व धुन के धनी धर्मपाल आर्य 'धीर' शास्त्री के मार्गदर्शन में हुई। इस बैठक में आर्यनगर में आर्य समाज मन्दिर बनाने का ऐतिहासिक कदम उठाने का निर्णय लेकर 15 फरवरी 2013 बसन्त पंचमी के दिन वैदिक धर्म के प्रचार के दुर्ग का शिलान्यास तपोनिष्ठ महात्मा आचार्य बलदेव जी महाराज के कर कमलों से करवाने का निश्चय हुआ। चाँदसिंह आर्य की प्रेरणा से महाशय मोहब्बत सिंह आर्य ने आर्य समाज मन्दिर का मुख्य द्वार -'स्वामी नित्यानन्द द्वार' बनवाने की घोषणा तथा श्री ब्रह्मदेव आर्यशास्त्री मा. सत्यदेव आर्य, मा. वेद प्रकाश आर्य, मा. रवीन्द्र आर्य, हरिदत्त आर्य, डी.पी.ई., मा. हीरासिंह आर्य, मा. सज्जन सिंह आर्य सरपंच, रणधीर सिंह आर्य, व दरियासिंह आर्य ने एक-एक लाख रुपये व मा. ओम् प्रकाश आर्य ने 21,000/- मन्दिर हेतु देने की घोषणा की।

- कुलदीप आर्य शास्त्री,

मन्त्री आर्य समाज बाढ़ड़ा व मन्त्री आर्य वीर दल

भिवानी

आर्य वीर दल हरियाणा द्वारा स्वामी बलेश्वरानन्द जी सम्मानित

7 मार्च को प्रति वर्ष की भांति श्रद्धेय पूज्य स्वामी बलेश्वरानन्द जी (उत्तराधिकारी गुरु ब्रह्मानन्द आश्रम बनी, पूण्डरी कैथल) का समर्पण दिवस आश्रम की यज्ञशाला में बड़ी धूम धाम से मनाया गया। पूज्य स्वामी जी ने 7 मार्च, 1966 को घर त्याग कर गुरु ब्रह्मानन्द जी को आत्म-समर्पण किया था तब से निरन्तर पूज्य स्वामी जी महाराज गुरु जी के बताये वैदिक पद पर अग्रसर हो अहर्निश सेवा, परोपकार एवं राष्ट्र हित के कार्यो में अनवरत रूप से संलग्न है।

इस भव्य कार्यक्रम का शुभारम्भ आयुष्काम यज्ञानुष्ठान से किया गया। तदनन्तर गुरु ब्रह्मानन्द जी की जीवन गाथा एवं इक योगी वेदों वाला नाम से कैसेट का लोकार्पण गणमान्य प्रतिष्ठित आगन्तुक अतिथियों द्वारा किया गया हजारों की संख्या में उपस्थित माताओं, बहनों, सज्जनों आबाल, वृद्धों के सम्मुख उस कैसेट का चार स्क्री... पर रोमाञ्चक प्रदर्शन हुआ, जिसे सभी ने मन्त्र-मुग्ध होकर देखा, सुना एवं उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस गरिमा मय अवसर पर आचार्य

श्री चन्द्रदेव जी (प्रचार मन्त्री सार्वदेशिक आर्य वीर दल) की ओर से पूज्यपाद स्वामी बलेश्वररानन्द जी का शाल ओढ़ा कर प्रशस्ति पत्र और रजत पदक प्रदान कर उनके द्वारा प्रचार वाहन हेतु दिये गये एक लाख रुपये के साहयोग दिया कृतज्ञता ज्ञापन निमित्त अभिनन्दन किया गया।

अन्त में इस कार्यक्रम के यशस्वी, कुशल संयोजक भाई श्री राजपाल सिंह (बहादुर) जी ने सभी उपस्थित श्रोताओं का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम समाप्ति के बाद सभी ने प्रसन्नतापूर्वक ऋषि लंगर (भण्डारा) ग्रहण किया।

1. क्रान्तिकारी ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश पढ़ें।
2. क्रान्तिकारियों के ग्रंथ सत्याथ्रप्रकाश को पढ़ें।
3. धर्म को जानने के लिये सत्यार्थप्रकाश पढ़ें।

■

आर्य वीर विजय (मासिक)

25 अप्रैल, 2013

HR/FBD/67/2013-2015 dt. 1.1.13
Reg. No. : 42323/84

सेवायाम्

श्रीमान्/श्रीमती

आर्य समाज, सैक्टर 7,
फरीदाबाद-121 006

उजली व चमकदार धुलाई

हाथ सुरक्षित

वनस्पति अखाद्य तेलों से निर्मित

निर्माता : **पुनीत उद्योग**

37- E, सैक्टर 6, फरीदाबाद-121006

दूरभाष : 0129-2241467, 4061389

ट्रेड मार्क मालिक :-

उत्तम कैमीकल उद्योग

प्लाट नं. 309, सैक्टर-24, फरीदाबाद पिन - 121006

आर्य वीर विजय, मनोहर लाल द्वारा आर्य वीर दल हरियाणा के लिए 'तप मिनी ऑफसैट प्रिंटर्स', 279 सेक्टर 7 मार्किट, फरीदाबाद से छपवाकर, आर्यसमाज मन्दिर, सैक्टर 7, फरीदाबाद-121006 से प्रेषित।